ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 115-116

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

संचार साधन युवा अपराध

अनिता कुमारी
एम0 ए0, पी–एच0 डी0– समाजशास्त्र, ग्राम – भातु बिगहा, पो0– एकंगरसराय, नालंदा (बिहार), भारत

Received- 13.08.2020, Revised- 17.08.2020, Accepted - 19.08.2020 E-mail: - dr.ramnyadav@gmail.com

सारांश : ***अपराध एक सार्वभौम सामाजिक प्रघटना है जो समाज एवं काल विशेष की परिस्थितियों से संयुक्त होती है। आदिकाल से ही प्रत्येक समाज में अपराध किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। रमसे क्लार्क ने अपनी पुस्तक 'क्राइम इन अमेरिका' (1970, पृष्ठ 3) पर समाज में अपराध की स्वाभाविकता पर चर्चा करते हुए अलंकारिक भाषा में कहा है कि, "अपराध वह दर्पण है जिसमें लोगों का चरित्र प्रतिबिम्बित होता है। यह वह दुःखद वास्तविकता है जिसका हम सामना नहीं करना चाहते हैं। जीवन की अन्य वास्तविकताएँ सरलता से स्वीकार की जा सकती हैं, क्योंकि उनका नियन्त्रण सरलता से हो सकता है, किन्तु दुष्चरित्रता के सुधार की सरल विधि मानव को आज तक उपलब्ध नहीं है। मानव चरित्र का यह आयाम उतना ही टेढ़ा और उतना ही सुदृढ़ है जितना कि हम सब लोग। जीवन के जो गुण हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं, वे ही हमारे अपराध करने की शक्ति का निर्धारण भी करते हैं। अपराध इस प्रकार एक घृणित प्रघटना मात्र नहीं है– यह मानव व्यवहार है और मानव ही अपराध करता है।"***

कुंजीभूत शब्द– सार्वभौम, सामाजिक प्रघटना, परिस्थितियों, आदिकाल, विद्यमान, अपराध, स्वाभाविकता, नियन्त्रण।

सामाजिक दृष्टि से अपराध वह समाज विरोधी व्यवहार है, जिससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को वास्तविक क्षति पहुँचती है। अपराध की अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

गैरोफेलों के अनुसार – 'करुण और ईमानदारी की प्रचलित भावनाओं का उल्लंघन ही अपराध है।

रेडक्लिफ ब्राउन के शब्दों में– 'अपराध उस व्यवहार का उल्लंघन है जो दण्ड–विधान को निष्पादित करता है।

थामस एवं जनैनिकी ने अपराध को सामाजिक मनोविज्ञान की दृष्टि से परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'अपराध वह कार्य है जो उस समूह की एकात्मकता का विरोधी है जिसको व्यक्ति अपना समझता है।

इलियट एवं मेरिल के शब्दों में – 'अपराध को समाज विरोधी व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सता है जिसे समूह अस्वीकार करता है तथा जिसके लिए यह दण्ड प्रदान करता है।

हैकरवाल के शब्दों में – 'सामाजिक दृष्टिकोण से अपराध के अन्तर्गत व्यक्ति के ऐसे व्यवहार अन्तर्निहित है जो मानव–सम्बन्ध की व्यवस्था में बाधा डालते हैं जिसे समाज अपने अस्तित्व के लिए प्राथमिक दशा में स्वीकार करता है।

बार्न्स एवं टीटर्स के अनुसार – "प्राविधिक रूप में 'अपराध' पद का अर्थ समाज विरोधी व्यवहार के उस स्वरूप से है, जिससे सार्वजनिक मनोभावों का उल्लंघन उस सीमा तक हुआ है, जो विधान द्वारा निषिद्ध है। विधिकर्त्ता कार्य को परिभाषित करते हैं और उसके लिए दण्ड लागू करते हैं।"

"अन्य शब्दों में, एक अपराध एक ऐसा कार्य है जिसे समूह पर्याप्त रूप से खतरनाक समझता है तथा किसी ऐसी भर्त्सनात्मक एवं दण्डात्मक कार्यवाही की संस्तुति करता है जिससे इस प्रकार के अपराध भयभीत हो जाएँ तथा वैसा कार्य न करें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अपराध केवल समाज– विरोधी व्यवहार की समष्टि (Totality) का एक विशिष्ट भाग है। इन्हीं विचारों का समर्थन जे.एल. गिलिन Criminology and Penology, Newyork, p. 9 में प्रस्तुत अपराध की परिभाषा के अन्तर्गत भी किया गया है। गिलिन के अनुसार "अपराध एक ऐसा कार्य है जो कि वास्तव में समाज के लिए हानिप्रद प्रदर्शित हो चुका है या लोगों के एक ऐसे समूह के द्वारा हानिप्रद स्वीकार किया जाता है जिसके पास अपने विश्वास को लागू करने की शक्ति है तथा वह ऐसे कार्य को सकारात्मक दण्डविधानों के अन्तर्गत निषिद्ध करता है।

चलचित्र, दूरदर्शन एवं रेडियो (Movies, Television and Radio)– आज के सभ्य नागरिक जीवन में चलचित्र, दूरदर्शन तथा रेडियो का प्रभाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ये तीनों ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा चारित्रिक उत्थान

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-13, No.-II, Issues-17, YEAR- Sept. -2020

एवं पतन दोनों ही सम्भव है। तथापि यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि ये तीनों मनुष्य को विलासप्रिय जीवन की ओर उन्मेषित करते हैं। ये लोगों को क्षणिक जीवन–दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इनसे लोगों में सुविधाओं एवं अधिकारों के प्रति नवीन विचार जागृत होते हैं एवं पहनावे के प्रति नवीन फैशन करने की आकांक्षा जागृत होती है। इसी तरह भाषा, सभ्यता तथा शिशु विकास से सम्बन्धित अनेक बाते देखने और सुनने को मिलती हैं। ये बच्चों को जहाँ एक ओर रुचिकर संगीत मानते हैं तथा प्रेम प्रदर्शन की तकनीकी सिखाते हैं वही दूसरी ओर वे कुछ निश्चित अपराधिक तकनीकियों का ज्ञान भी प्रदान करते हैं। बच्चे अपने खेलों में अपराधिक तकनीकियों का प्रयोग करते हैं और बच्चे तथा वयस्क दोनों अपने दैनिक भाषा तथा आचरण में उनका अनुशीलन करने का प्रयास करते हैं। बहुत से बच्चे अपराधिक प्रदर्शन देखने के पश्चात् गिरोह के सदस्यों व डकैती के सदृश्य भूमिका करते पाये गये हैं तथा अनेक किशोर कल्पना प्रधान प्रेम कहानी या वासनात्मक फिल्मों को देखने के पश्चात् अपने वास्तविक जीवन में उनका अनुशीलन करने लगते हैं। बहुत से अपराध चलचित्रपर प्रदर्शित की गयी तकनीकियों के आधार पर किये गये हैं। ब्लूमर तथा हाउजर के अनुसार चलचित्र अपराधिक क्रियाओं, विलासितापूर्ण जीवन और इसे प्राप्त करने के अनुचित साधनों को अपनाने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। कहना न होगा कि अपराधिक धटनाओं का चित्रपट पर उन्मूक्त व अश्लील प्रदर्शन और अपराधिता की रहस्यमय प्रस्तुति अपरिपक्व बालकों व किशोरों एवं युवकों की अपराधिक जुगुप्साओं को कुरेदती है और ये सभी उनके अपरिपक्व मानस–पटल पर धीरे–धीरे अंकित हो जाती हैं। परिणामतः अधिकांश अपरिपक्व बालक, किशोर तथा युवा चलचित्रों से प्रभावित होकर अपराधिक कार्यों की ओर उन्मेषित हो जाते हैं। मार्टिन इसलिन ने अपनी पुस्तक दि एज ऑफ टलीविजन में बताया है कि दूदरर्शन (टेलीविजन) हमारे घरों में सामूहिक दिवा–स्वप्न का अन्तहीन प्रवास लाता है, जिससे तथ्य एव वास्तविकता, वास्तविक सांर एवं स्वप्न चित्रित संवाद का भेद धुंधला हो जाता है। दूरदर्शन धनवान होने की हमारी इच्छा को तृप्त करता है और कामूक इच्छाओं की सन्तुष्टि का प्रबन्ध करता है। संचार के प्रभाव का यह पक्ष हमारा अध्ययन यथार्थ जीवन से हटाया है और तार्किक रूप से सोचने की क्षमता में कमी लाता है। यही कारण है कि कई अध्येताओं, शिक्षाविदों तथा अन्य लोगों ने श्रव्य–दृश्य संचार के प्रभावों की तीखी आलोचना की है। इन विद्वानों ने यहा तक कह डाला है कि लोकसंचार के अभिकरण अपराध को बढ़ावा देते हैं।

परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्येक बालक चलचित्र या दूरदर्शन देखकर ही अपराधी बनता है। यद्यपि चलचित्र या दूरदर्शन के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है, तथापि इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता है, अपराधी बनने में अन्य सामाजिक कारक भी महत्त्वपूर्ण होते हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक संस्थाओं की चूँकि स्थानीय समुदाय के संगठन को निर्धारित करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु सामान्य संस्थाओं का जब अचानक विघटन होने लगता है तब ये अपराध का कारण बन जाती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो० श्यामधर सिंह : अपराधशास्त्र के सिद्धान्त, अपना अशोक प्रकाशन, कबीर नगर कालोनी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, 2015.
2. डॉ० गोपाल कृष्ण अग्रवाल : सामाजिक विघटन, आगरा बुका स्टोर, आगरा, 1987.
3. प्रो० एम० एल० गुप्ता एवं डॉ० डी० डी० शर्मा : समाजशास्त्र सीरीज प्रतियोगिता साहित्य, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, 2002.

*****

PIF/6.500 *ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14*